ISSN 2277 - 7865

वर्ष : ३६

अंक : ०८

तित्थयर

मूल्य ५०.०० रुपये

नवम्बर २०१२

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

Suvigya & Saurabh Boyed

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३६ अंक - ०८ नवम्बर २०१२

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	अहिंसा–मानव के सर्वांगीर्ण विकास की पृष्ठभूमि	डॉ. लता बोथरा	२५७
२.	जैन प्रतिमाविज्ञान	डॉ. मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी	२६५
३.	कुवलय माला		२७०

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : एलोरा की गुफा में उत्कीर्ण देवी अम्बिका की मूर्ति।

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

अहिंसा

मानव के सर्वांगीर्ण विकास की पृष्ठभूमि

आवंती केयावंती लोयंसि समणा य माहणा य पुढो विवायं वयंति, से दिट्ठं य णे सुयं य णे मयं य णे विण्णायं य णे उड्ढं अहे तिरियं दिसासु सव्वओ सुपडिलेहियं य णे, सव्वे पाणा, सव्वे जीवा, सव्वे भूया, सव्वे सत्ता, इंतव्वा अज्जावेयव्वा..... (आचारांग सूत्र)

अर्थात् जितने भी दार्शनिक है वे अपने-अपने दर्शन द्वारा विभिन्न मतों की स्थापना करते हैं और कहते है कि हमारे आचार्यों ने दिव्य ज्ञान द्वारा इस धर्म को देखा है, उस पर मनन किया और यह जाना है कि धर्म के लिए जो हिंसा की जाती है उसमें कोई दोष नहीं है तथा उसे पाप का बंध नहीं होता है। इसी का अनुकरण कर वैदिक साहित्य में अहिंसा का समर्थन करते हुए भी धार्मिक यज्ञों में हिंसात्मक बलि का (अश्वमेघ, नरमेघ) का विधान करते हैं और उसको उचित ठहराने के लिए अनीति का सहारा लेते है। इस सन्दर्भ में एक प्रमुख दृष्टान्त आता है कि– राजा अभिचन्द्र के यहाँ सत्यवादी वसु का जन्म हुआ। किशोर अवस्था होते ही वसुराजकुमार को क्षीरकदम्बक गुरु के पास पढ़ने भेजा। उस समय क्षीरकदम्बक उपाध्याय के पास उनका पुत्र पर्वत, राजपुत्र वसु और विद्यार्थी नारद ये तीनों साथ-साथ अध्ययन करते थे। एक बार ये तीनों विद्यार्थी अध्ययन के परिश्रम के कारण थक कर मकान की छत पर सो गए। उस समय आकाश में उड़कर जाते हुए जंघाचारी मुनियों ने इन्हें देखकर परस्पर कहा– "इन तीनों में से एक स्वर्ग में जायगा और दो नरक में जायगा।" क्षीरकदम्बक उपाध्याय ने यह वार्तालाप सुना और वे गहरी चिन्ता में डूब गए। उन्हें खेद हुआ

कि 'मैं इनका अध्यापक और मेरे पढ़ाए हुए विद्यार्थी नरक में जाएं! जैसी भवितव्यता! फिर भी मुझे यह तो पता लगा लेना चाहिए कि इनमें से कौन स्वर्ग में जाएगा और कौन नरक में?' अतः उन्होंने अपनी सूझबूझ से कुछ विद्या और युक्ति से लाक्षारस से परिपूर्ण आटे के तीन मुर्गे बनाए। एक दिन तीनों विद्यार्थियों को अपने पास बुलाया और प्रत्येक को एक-एक मुर्गा देते हुए कहा– 'इसे ले जाओ और इसका वध ऐसी जगह ले जाकर करना, जहाँ कोई न देखता हो।'

वसु और पर्वत दोनों अपने-अपने मुर्गे को लेकर नगरी के बाहर अलग-अलग दिशा में ऐसे एकान्त स्थान में पहुँचे, जहाँ मनुष्यों का आवागमन विलकुल नहीं होता था। अतः उन्होंने यह सोचकर कि यहाँ कोई देखता नहीं है, अपने-अपने मुर्गे को खत्म कर दिया। महात्मा नारद अपने मुर्गे को लेकर एकान्त जनशून्य प्रदेश में पहुँचा, लेकिन वहाँ उसने इधर उधर देखकर सोचा कि गुरुजी ने आज्ञा दी है कि जहाँ कोई न देखे वहाँ इसे मारकर लाना। यहाँ तो यह मुर्गा मुझे देख रहा है, मैं इसे देख रहा हूँ, आकाशचारी पक्षी वगैरह देख रहे हैं, लोकपाल देखते हैं, और कोई नहीं देखता है तो भी केवल ज्ञानी तो देखते ही होंगे, उनसे तो अधेरी से अंधेरी जगह में भी गुप्तरूप से की हुई कोई भी बात छिपी नहीं रहती। अतः मैं इस मुर्गे का वध किसी भी जगह नहीं कर सकता, तब फिर गुरुजी की आज्ञा का पालन कैसे होगा? यों चिन्तनसागर में गोते लगाते-लगाते नारद को एकाएक ज्ञान का प्रकाश हुआ, हो न हो, सदा हिंसापराङमुख दयालु गुरुजी ने हमारी परीक्षा के लिए मुर्गा दिया है, मारना चाहते तो वे स्वयं मार सकते थे। हम तीनों को एक-एक मुर्गा देकर मार लाने की आज्ञा दी, उसके पीछे गुरुजी का आशय हमारी अहिंसाबुद्धि की परीक्षा लेने का है। उनकी आज्ञा का तात्पर्य यही है– मुर्गे का वध न करना। मैं इसे नहीं मारूँगा। यों निश्चय करके नारद मुर्गे को मारे बिना ही लेकर गुरुजी के पास आया। और गुरुजी से मुर्गा न मार सकने का कारण

निवेदन किया। गुरुजी ने मन ही मन निश्चय किया कि यह अवश्य ही स्वर्ग में जाएगा और नारद को स्नेहपूर्वक छाती से लगाया एवं ये उद्‌गार निकाले—अच्छा-अच्छा, बहुत अच्छा किया बेटे।

कुछ ही देर बाद वसु और पर्वत भी आ गए। उन्होंने कहा—लीजिए गुरुजी! हमने आपकी आज्ञा का पालन कर दिया। जहाँ कोई नहीं देखता था, उसी जगह ले जाकर अपने-अपने मुर्गे को मारकर लाये हैं। गुरु ने उपालम्भ के स्वर में कहा—पापात्माओ! तुमने मेरी आज्ञा पर ठीक तरह से विचार नहीं किया। जिस समय तुमने मुर्गे को मारा, क्या उस समय तुम उसे नहीं देखते थे? या वह तुम्हें नहीं देख रहा था? क्या आकाशचारी पक्षी आदि खेचर नहीं देखते थे? खैर, तुम अयोग्य हो। क्षीरकदम्बक ने निश्चय किया कि ये दोनों नरकगामी प्रतीत होते हैं। तथा उनके प्रति उदासीन होकर उन दोनों को अध्ययन कराने की रुचि खत्म हो गई। विचार करने लगे—वसु और पर्वत को पढ़ाने का श्रम व्यर्थ गया। सच्चे गुरु का उपदेश पात्र के अनुसार फलित होता है। बादलों का पानी स्थानभेद के कारण ही सीप के मुंह में पड़कर मोती बन जाता है और वहीं सांप के मुंह में पड़कर जहर बन जाता है, या ऊसर भूमि या खारी जमीन पर या समुद्र में पड़कर खारा बन जाता है। अफसोस है, मेरा प्रिय पुत्र और पुत्र से बढ़कर प्रिय शिष्य वसु दोनों नरक में जायेंगे। अतः ऐसे गृहस्थाश्रम में रहने से क्या लाभ? इस प्रकार विचार करते करते क्षीरकदम्बक उपाध्याय को संसार से विरक्ति हो गई। उन्होंने वैराग्यपूर्वक गुरु से दीक्षा ले ली। अब उनका स्थान उनके व्याख्याविचक्षण पुत्र पर्वत ने ले लिया। गुरु-कृपा से सर्वशास्त्रविशारद बनकर शरद्‌ऋतु के मेघ के समान निर्मलबुद्धि से युक्त नारद अपनी जन्मभूमि में चले गए। राजाओं में चन्द्र समान अभिचन्द्र राजा ने भी उचित समय पर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। उनकी राजगद्दी पर वसुदेव के समान वसुराजा विराजमान हुए। वसुराजा इस भूतल पर सत्यवादी के रूप में प्रसिद्ध हो गया। वसुराजा अपनी इस प्रसिद्धि की सुरक्षा के

लिए सत्य ही बोलता था। एक दिन कोई शिकारी शिकार खेलने के लिए विन्ध्यपर्वत पर गया। उसने एक हिरण को लक्ष्य करके तीर छोड़ा; किन्तु दुर्भाग्य से वह तीर बीच में ही रुक कर गिर पड़ा। तीर के बीच में ही गिर जाने का कारण ढूंढने के लिए वह घटनास्थल पर पहुँचा। हाथ से स्पर्श करते ही उसे मालूम हुआ कि आकाश के समान स्वच्छ कोई स्फटिकशिला है। अतः उसने सोचा– जैसे चन्द्रमा में भूमि की छाया प्रतिबिम्बित होती है, इसी तरह इस शिला के दूसरी ओर प्रतिबिम्बित हिरण को मैंने कहीं देखा है। हाथ से स्पर्श किये बिना किसी प्रकार जाना नहीं जा सकता। अतः यह शिला अवश्य ही वसु राजा के योग्य है। यों सोचकर शिकारी ने चुपचाप वह शिला उठाई और वसुराजा के पास पहुंचकर उन्हें भेट देते हुए शिला प्राप्त होने का सारा हाल सुनाया। राजा वसु सुनकर और गौर से शिला को देखकर बहुत खुश हुआ। उस शिकारी को उसने बहुत सा इनाम देकर विदा किया। राजा ने उस शिला की गुप्तरूप से राजसभा में बैठने योग्य एक वेदिका बनाई और वेदिका बनाने वाले कारीगर को मार दिया। सच है राजा कभी किसी के नहीं होते। वेदिका पर राजा ने एक सिंहासन स्थापित कराया। इसके रहस्य से अनभिज्ञ लोग यह समझने लगे कि सत्य के प्रभाव से वसु राजा का सिंहासन अधर रहता है। सत्य से प्रसन्न होकर देवता भी इस राजा की सेवा में रहते हैं। इस प्रकार वसु राजा की उज्ज्वल कीर्ति प्रत्येक दिशा में फैल गई। उस प्रसिद्धि के कारण भयभीत बने हुए अन्य राजा वसु नृप के अधीन हो गए। **प्रसिद्धि सच्ची हो या झूठी, राजाओं को विजय दिलाती ही है।**

एक दिन नारद पर्वत के आश्रम में मिलने आये। उस समय उसने बुद्धिशाली पर्वत को अपने शिष्यों को ऋग्वेद की व्याख्या पढ़ाते हुए देखा। उस समय **अजैर्यष्टव्यम्** सूत्र आया तो उसकी व्याख्या करते हुए 'अज'-शब्द का अर्थ समझाया– बकरा। यह सुनकर नारद ने पर्वत से कहा– बन्धुवर! इस अर्थ के कहने में तुम्हारी कही भूल हो

रही है। तुमने भ्रान्तिवश अज का बकरा अर्थ किया है, जो नहीं होता है। अज का वास्तविक अर्थ होता है– तीन साल का पुराना धान्य। जो उग न सके। हमारे गुरुदेव ने भी अज का अर्थ धान्य ही किया था। क्या तुम उसे भूल गये? उस समय प्रतिवाद करते हुए पर्वत ने कहा- - तुम जो अर्थ बता रहे हो, वह अर्थ पिताजी ने नहीं किया था। उन्होंने अज शब्द का अर्थ बकरी ही किया था। और कोष में भी यहीं अर्थ मिलता है। तब नारद ने कहा– भाई! किसी भी शब्द के गौण और मुख्य दो अर्थ होते हैं। गुरुजी ने हमें अज शब्द के विषय में गौण अर्थ कहा था। गुरुजी धर्मसम्मत उपदेश देने वाले थे। श्रुति भी धर्मस्वरूपा ही है। इसलिए मित्र! श्रुतिसम्मत और गुरुपदिष्ट दोनों अर्थों के विपरीत बोलकर तुम क्यों पाप-उपार्जन कर रहे हो? पर्वतक ने अब इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया और हठाग्रहपूर्वक कहा– गुरुजी ने **अजान्मेषान्** श्रुतिवाक्य में अज का अर्थ बकरा ही बता है। गुरुजी के बताए हुए अर्थ का अपलाप करके क्या तुम धर्म उपार्जन करते हो? अभिमानयुक्त मिथ्यावाणी मनुष्य को दण्ड या भय देने वाली नहीं होती। अतः पर्वतक ने कहा– चलो, इस विषय में हम शर्त लगा लें। अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करने में जो असफल होगा, उसे अपनी जीभ कटानी होगी। पहले यह शर्त मंजूर कर लो। तब हम दोनों सहपाठी वसुराजा को प्रामाणिक मानकर इस विषय में उसके पास निर्णय लेने के लिए चलेंगे। उस सत्यवादी का निर्णय दोनों को मान्य करना होगा। नारद ने उस शर्त को और उस सम्बन्ध में वसुराजा द्वारा दिये हुए निर्णय को मानना स्वीकार किया, क्योंकि **सांच को आंच नहीं!** सत्य बोलने वाले को भय और क्षोभ नहीं होता। पर्वत की माता ने जब दोनों का विवाद और परस्पर शर्त लगाने की बात सुनी तो वह बहुत चिन्तित हुई और अपने पुत्र पर्वतक को एकान्त में ले जाकर कहा– बेटा! जब मैं घर का कार्य कर रही थी, तब तेरे पिता के मुंह से मैंने **अज** शब्द का अर्थ तीन साल पुराना धान्य ही सुना था। तूने जीभ कटाने की जो शर्त लगाई है, वह अहंकार और हठ से युक्त है। यह

काम तूने बहुत अनुचित किया है। बिना विचारे कार्य करने वाले अनेक संकटों से घिर जाता है। पर्वत ने जरा सहमते हुए कहा– माताजी! अब तो मैं आवेश में आकर जो कुछ कर चुका, वह कर चुका। अब आप बताइये कि फैसला हमारे पक्ष में किसी सूरत से हो सके, ऐसा कोई उपाय है या नहीं? पर्वत पर भविष्य में आने वाले भयंकर संकट की आशंका से पीड़ित व कांटे चुभने के समान व्यथित हृदय से माता सीधी वसुराजा के पास पहुँची। पुत्र के लिए क्या-क्या नहीं किया जाता? गुरुपत्नी को देखते ही वसुराजा ने प्रणाम करते हुए कहा– माताजी! आओ, पधारो! आपको देखने से ऐसा लगता है, मानो आज मुझे, साक्षात् गुरुश्री क्षीरकदम्बक के ही दर्शन हुए है। कहिए, मैं आपके लिए क्या करूँ? क्या दूँ? तब ब्राह्मणी ने कहा– पृथ्वीपति! मुझे पुत्रभिक्षा चाहिए, केवल इसी एक चीज की जरूरत है बेटा! पुत्र के चले जाने पर धन-धान्य आदि दूसरे पदार्थों के होने से क्या लाभ? वसु ने कहा–माताजी! पर्वत मेरे लिए पूज्य है; उसकी सुरक्षा मुझे करनी चाहिए। श्रुति में कहा है–गुरु के पुत्र के साथ गुरु के समान बर्ताव करना चाहिए। अकाल में रोष करने वाले यमराज ने आज किसके नाम की चिट्ठी निकाली है? माताजी! मुझे बताओं कि मेरे बन्धु को कौन मारना चाहता है? मेरे रहते आप क्यों चिन्ता करती हैं? तब पर्वत की माता ने कहा– अज–शब्द के अर्थ पर पर्वत और नारद दोनों में विवाद छिड़ गया। इस पर मेरे पुत्र पर्वत ने यह शर्त लगाई है कि यदि **अज** का अर्थ बकरा न हो तो मैं जीभ कटाऊंगा और बकरा हो तो तुम जीभ कटाना। इस विवाद के निर्णयकर्ता प्रमाणपुरुष के रूप में दोनों ने तुम्हें माना है। इसलिए मैं तुमसे प्रार्थना करने आई हूं कि अपने बन्धु की रक्षा करने हेतु अज शब्द का अर्थ बकरा ही करना। महापुरुष तो प्राण देकर भी परोपकार करने वाले होते हैं, तो फिर वाणी से तुम इतना सा परोपकार नहीं करोंगे? यह सुनकर वसु नृप ने कहा– माताजी! यह तो असत्य बोलना होगा। मैं असत्य वचन कैसे बोल सकता हूँ? प्राणनाश का अवसर आने पर भी सत्यवादी असत्य नहीं बोलते। दूसरे लोग कुछ

भी बोलें, परन्तु पापभीरु को तो हर्गिज नहीं बोलना चाहिए और फिर गुरुवचन के विरुद्ध बोलना या झूठी साक्षी देना, यह बात भी मुझसे कैसे हो सकती है? पर्वत की माता ने रोष में आकर कहा– तो फिर दो रास्ते हैं तुम्हारे सामने– यदि परोपकारी बनना है तो गुरुपुत्र की रक्षा करके उसका कल्याण करो और स्वार्थी ही रहना है तो सत्यवाद का आग्रह रखो। इस प्रकार बहुत जोर देकर कहने पर वसुराजा ने उसका वचन मान्य किया। क्षीरकदंबक की पत्नी हर्षित होकर घर चली आई।

ठीक समय पर विद्वान नारद और पर्वत दोनों निर्णय के लिए वसुराजा की राजसभा में आए। सभा में दोनों वादियों के सत्य-असत्यरूप क्षीर नीरवत् भलीभांति विवेक करने वाले उज्जवल प्रभावान् माध्यस्थ गुण वाले सभ्य लोग एकत्रित हुए। सभापति वसुराजा एक स्वच्छ स्फटिक शिला की वेदिका पर स्थापित सिंहासन पर बैठा हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानों पृथ्वी और आकाश के बीच में सूर्य हो। उसके बाद नारद और पर्वत ने वसुराजा ने सामने **अज** शब्द पर अपनी-अपनी व्याख्या प्रस्तुत की और कहा– राजन्! हम दोनों के बीच में आप निर्णायक है, आप इस शब्द का यथार्थ अर्थ कहिए। क्योंकि ब्राह्मणों और वृद्धों ने कहा है– स्वर्ग और पृथ्वी इन दोनों के बीच में जैसे सूर्य है, वैसे ही हम दोनों के बीच में आप मध्यस्थ है। दोनों के विवाद में निर्णायक हैं। अब आप ही प्रमाणभूत हैं। आपका जो निर्णय होगा, वही हम दोनों को मान्य होगा। सत्य या शपथ के लिए हाथ में उठाया जाने वाला गर्मागर्म दिव्य घट या लोहे का गोला वास्तव में सत्य के कारण स्थिर रहता है। सत्य पर ही पृथ्वी आधारित है, द्युलोक भी सत्य पर प्रतिष्ठित है। सत्य से हवा चलती है। सत्य से देव वश में हो जाते हैं। सत्य से ही वृष्टि होती है। सारा व्यवहार सत्य पर टिका है। आप दूसरे लोगों को सत्य पर टिकाते हैं तो आपको इस विषय में क्या कहना? सत्यव्रत के लिए जो उचित हो वहीं निर्णय दो। वसुराजा

ने मानो सत्य के सम्बन्ध में उक्त बातें सुनी अनसुनी करके किसी प्रकार का दीर्घदृष्टि से विचार न करते हुए कहा, गुरुजी ने अजान्-मेषान् अर्थात् अज का अर्थ बकरा किया था। इस प्रकार का असत्य वचन बोलते ही वेदिकाधिष्ठित देवता कोपायमान हुए। उन्होंने आकाश जैसी निर्मल स्फटिकशिलामयी वेदिका एवं उस पर स्थापित सिंहासन दोनों को चूरचूर कर दिया। वसुराज को तत्काल भूतल पर गिरा दिया, मानों उन्होंने उसे नरक में गिराने का उपक्रम किया हो। नारद भी तत्काल यों कहकर तिरस्कार करता हुआ वहां से चल दिया कि चाण्डाल के समान झूठी साक्षी देने वाले तेरा मुंह कौन देखे? असत्य वचन बोलने से देवताओं द्वारा अपमानित वसुराजा घोर नरक में गया। अपराधी वसुराजा का जो भी पुत्र राजगद्दी पर बैठता है, देवता उसे मार गिराते थे। इस तरह वसु के आठ पुत्रों को देवों ने मार गिराया। अतः वसुराज के इस प्रकार असत्य बोलने का फल सुनकर जिनवचन श्रवण करने वाले भव्य आत्माओं को किसी के भी आग्रह दबाव या लिहाज मुलाहिजे में आकर अथवा प्राणों के चले ज़ाने की आशंका हो तो भी असत्य नहीं बोलना चाहिए। यह है नारत पर्वत कथा का हार्द।

ये उपाख्यान वेदों में हिंसा किस प्रकार मान्य हुई इसका उदाहरण है। अहिंसा सिर्फ धर्म नहीं, जीने की कला है। जिससे हमें भी सुख मिलता है और दूसरों को भी। हिंसा को अपनाने से प्रत्येक जीव एक दूसरे को कष्ट पहुँचाता दिखाई देगा। चारों ओर भय और अविश्वास का परिवेश बन जायेगा। अतः अहिंसा का पालन अनिवार्य है।

(क्रमशः)

जैन प्रतिमाविज्ञान

डॉ. मारूतिनन्दन प्रसाद तिवारी

जैन कला एवं प्रतिमाविज्ञान पर पर्याप्त सामग्री सुलभ है। लेकिन अभी तक इस विषय पर अपेक्षित विस्तार से कार्य नहीं हुआ है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ की दृष्टि से ग्रन्थ में यथासंभव दक्षिण भारत के जैन प्रतिमविज्ञान की भी स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है। उत्तर भारत से तात्पर्य विन्ध्यपर्वत श्रेणियों के उत्तर के भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र से है जो पश्चिम में गुजरात एवं पूर्व में उड़ीसा तक विस्तीर्ण है। जैन प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से उत्तर भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र किन्हीं विशेषताओं के सन्दर्भ में एक सूत्र में बँधा है, और जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक और परवर्ती अवस्थाओं तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों की दृष्टि से यह क्षेत्र महत्वपूर्ण भी है। जैन धर्म की दृष्टि से भी इसका महत्व है। इसी क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी युग के सभी चौबीस जिनों ने जन्म लिया, यही उनकी कार्य-स्थली थी, तथा यही उन्होंने निर्वाण भी प्राप्त किया। सम्भवतः इसी कारण प्रारम्भिक जैन ग्रंथों की रचना एवं कलात्मक अभिव्यक्तियों का मुख्य क्षेत्र भी उत्तर भारत ही रहा है। जैन आगमों का प्रारम्भिक संकलन एवं लेखन यहीं हुआ तथा प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रारम्भिक ग्रन्थ **कल्पसूत्र, पउमचरिय, अंगविज्जा, वसुदेवहिण्डी, आवश्यक निर्युक्ति** आदि भी इसी क्षेत्र में लिखे गये।

प्रतिमा लक्षणों के विकास की दृष्टि से भी उत्तर भारत का विविधतापूर्ण अग्रगामी योगदान है। इस विकास के तीन सन्दर्भ है; पारम्परिक, अपारम्परिक और अन्य धर्मों की कला परम्पराओं का प्रभाव।

जैन प्रतिमाविज्ञान के पारम्परिक विकास का हर चरण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जैन कला का उदय भी इसी क्षेत्र में हुआ। महावीर की जीवन्तस्वामी मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है, जिसके निर्माण की परम्परा साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार महावीर के जीवनकाल (छठी शती ई. पू.) से ही थी।[1] प्रारम्भिक जिन मूर्तियाँ लोहानीपुर (पटना एवं चौसा (भोजपुर) से मिली है। मथुरा में शुंग-कुषाण युग में प्रचुर संख्या में जैन मूर्तियाँ निर्मित हुई। ऋषभ की लटकंती जटा, पार्श्व से सात सर्पफण, जिनों के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न और शीर्ष भाग में उष्णीष[2] एवं जिन मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यो[3] और ध्यानमुद्रा[4] के प्रदर्शन की परम्परा मथुरा में ही प्राम्भ हुई।

जिन मूर्तियों में लांछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों का चित्रण भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ। जिनों के जीवनदृष्यों, विद्याओं, 24 यक्ष-यक्षियों, 14 या 16 मांगलिक स्वप्नों, भरत, बाहुबली, सरस्वंती, क्षेत्रपाल, 24 जिनों के माता-पिता, अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों, एवं अन्य देवों के प्रतिमां-निरूपण से सम्बन्धित उल्लेख और उनकी पदार्थगत अभिव्यक्ति भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में हुई है।[5]

---

1. शाह, यू. पी., ए यूनीक जैन इमेज ऑफ जीवन्तस्वामी, ज. ओ. ई., खं. 1, अं. 1, पृ. 72-79।
2. दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों में उष्णीय नहीं प्रदर्शित है। श्रीवत्स चिह्न भी वक्षःस्थल के मध्य में न होकर सामान्यत; दाहिनी ओर उत्कीर्ण है। दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों में श्रीवत्स चिह्न का अभाव भी दृष्टिगत होता है। उन्नित्थन, एन. जी., रेलिक्स ऑव जैनिजम-आलतूर, ज.इं. हि., खं. 44, भाग 1, पृ. 542, जै. क. स्था., खं. 3, पृ. 556
3. सिंहासन, अशोकवृक्ष, प्रभामण्डल, छत्रत्रयी, देवदुन्दुभि, सुरपुष्प-वृष्टि, चारमघर, दिव्यध्वनि।
4. मथुरा के आयागपटों पर सर्वप्रथम ध्यानमुद्रा में आसीन जिन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुई। इसके पूर्व की मूर्तियों (लोहानीपुर, चौसा) में जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं।
5. दक्षिण भारत के मूर्ति अवशेषों में विद्याओं, 24 यक्षियों, आयागपट, जीवन्तस्वामी महावीर, जैन युगल एवं जिनों के माता-पिता की मूर्तियाँ नहीं है।

उत्तर भारत का क्षेत्र परम्परा-विरुद्ध और परम्परा में अप्राप्य प्रकार के चित्रणों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था।[1] देवगढ़ एवं खजुराहों की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियाँ, कुछ जिन मूर्तियों में परम्परा सम्मत यक्ष-यक्षियों की अनुपस्थिति,[2] देवगढ़ एवं खजुराहों की बाहुबली मूर्तियों में जिन मूर्तियों के समान अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी का अंकन, देवगढ़ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियों में जिनों के साथ बाहुबली, सरस्वती एवं भरत चक्रवर्ती का अंकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। कुछ स्थलों (जालोर एवं कुम्भारिया) की मूर्तियों में चक्रेश्वरी आदि श्वेताम्बर स्थलों पर ऐसे कई देवों की मूर्तियाँ है जिनके उल्लेख किसी जैन ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते।

जैन शिल्प में एकरसता के परिहार के लिए, स्थापत्य के विशाल आयामों को तदनुरूप शिल्पगत वैविध्य से संयोजित करने के लिए एवं अन्य धर्मावलम्बियों को आकर्षित करने के लिए अन्य सम्प्रदायों के कुछ देवों को भी विभिन्न स्थलों पर आकलित किया गया। खजुराहों का पार्श्वनाथ जैन मन्दिर इसका एक प्रमुख उदाहरण है। मन्दिर के मण्डोतर पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम एवं बलराम आदि की स्वतन्त्र एवं शक्तियों के साथ आलिंगन मूर्तियाँ है।[3] मथुरा की एक अम्बिका मूर्ति में बलराम, कृष्ण, कुबेर एवं गणेश का, मथुरा एवं देवगढ़ की नेमि मूर्तियों में बलराम-कृष्ण का, विमलवसही की एक रोहिणी मूर्ति में शिव

---

1. उत्तर भारत में होने वाली परिवर्तनों से दक्षिण भारत के कलाकार अपरिचित थे।
2. गुजरात-राजस्थान की जिन मूर्तियों में सभी जिनों के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है जो जैन परम्परा में नेमि के यक्ष-यक्षी हैं। ऋषभ एवं पार्श्व की कुछ मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी भी अंकित हैं।
3. ब्रुन, क्लाज, दि फिगर ऑफ दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, एट खजुराहो, **आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ,** बम्बई, 1956, पृ. पृ. 7-35

और गणेश का, ओसिया की देवकुलिकाओं और कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर पर गणेश का,[1] विमलवसहो और लुणवसही में कृष्ण के जीवनदृष्यों का एवं विमलवसही में पोडश-भुज नरसिंह का अंकन ऐसे कुछ अन्य उदाहरण हैं।

जटामुकुट से शोभित वृषभवाहना देवी का निरूपण श्वेताम्बर स्थलों पर विशेष लोकप्रिय था। देवी की दो भुजाओं में सर्प एवं त्रिशूल हैं। देवी का लाक्षणिक स्वरूप पूर्णतः हिन्दू शिवा से प्रभावित है।[2] कुछ श्वेताम्बर स्थलों पर प्रज्ञप्ति महाविद्या की एक भुजा में कुक्कुट प्रदर्शित है, जो हिन्दू कौमारी का प्रभाव है।[3] कुछ उदाहरणों में गौरी महाविद्या का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है। यह हिन्दू माहेश्वरी का प्रभाव है।[4] राज्य संग्रहालय, लखनऊ (66.225, जी 312) की दो अम्बिका मूर्तियों में देवी के हाथों में दर्पण, त्रिशूल-घण्टा और पुस्तक प्रदर्शित हैं, जो उमा और शिवा का प्रभाव है।[5]

इस क्षेत्र में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों-परम्परा के ग्रन्थ एवं महत्वपूर्ण कला केन्द्र हैं।[6] इस प्रकार इस क्षेत्र की सामग्री के अध्यन से श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों के ही प्रतिमाविज्ञान के तुलनात्मक एवं क्रमिक विकास का निरूपण सम्भव है। इससे उनके आपसी सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ सकता है। इस क्षेत्र में एक ओर उत्तर प्रदेश, मध्य

---

1. उल्लेखनीय है कि गणेश की लाक्षणिक विशेषताएँ सर्वप्रथम 1412 ई. के जैन ग्रन्थ आचारदिनकर में ही निरूपित हुई।
2. राव, टी. ए. गोपीनाथ, एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खण्ड 1, भाग 2, वाराणसी, 1971 (पु. मु.), पृ. 366
3. वही, पृ. 387-88
4. वहीं, पृ. 366, 387
5. वहीं, पृ. 360, 366, 387
6. दक्षिण भारत की जैन मूर्तिकला दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है।

प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, एवं बंगाल में दिगम्बर सम्प्रदाय के कलाविशेष और दूसरी ओर गुजरात एवं राजस्थान में श्वेताम्बर कलाकेन्द्र स्वतन्त्र रूप से पल्लवित और पुष्पित हुए। गुजरात और राजस्थान में दिगम्बर सम्प्रदाय की भी कलाकृतियाँ मिली है, जो दोनों सम्प्रदायों के सहअस्तित्व की सूचक हैं। गुजरात और राजस्थान में **हरिवंशपुराण, प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार** आदि कई महत्वपूर्ण दिगम्बर जैन ग्रन्थों की भी रचना हुई। इस क्षेत्र में ऐसे अनेक समृद्ध जैन कला केन्द्र भी स्थित है। जहाँ कई शताब्दियों की मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। इनमें मथुरा, चौसा, देवगढ़, राजगिर, अकोटा, कुम्भारिया, तारंगा, ओसिया, विमलवसही, लूणयसही, जालोर, खजुराहो एवं उदयगिरि खण्डगिरि उल्लेखनीय है।

क्रमशः

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

सागरदत्त की कथा :

एणिका और शुक को साधर्मी जानकर कुमार कुवलयचन्द्र ने उन दोनों को स्नेहपूर्वक अभिवादन किया। उन दोनों ने भी प्रेमपूर्वक प्रत्युत्तर दिया। एणिका ने कहा—

भद्र! तुम भी साधर्मिकों में परम आदरणीय हो।

कुछ समय तक तीनों परस्पर वार्तालाप करते रहे। तभी सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा। एणिका ने कहा—

परदेशी! कुछ ही देर में रात्रि हो जायेगी। आप स्नान आदि करके फल-फूलों से तृप्त हो लें।

तीनों तृप्त हुए और संध्याकालीन सामायिक आदि धर्मक्रियाओं में लीन हो गये।

दूसरे दिन प्रात की धर्म-क्रियाओं से निवृत्त होकर कुमार ने, एणिका और शुकराज से जाने की आज्ञा माँगी तो वे दोनों दुःखी हो गये। तोते ने भरे गले से पूछा—

कहाँ जाओगे, भद्र?

दक्षिण की ओर। विजया नगरी को।

क्यो बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है?

हाँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एक अभ्यर्थना, दूसरा साधर्मिक का कार्य और तीसरा शिव सुख का मूल-तीन कारण हैं, इसके पीछे। इसलिए जाना ही होगा।

तोता मौन हो गया। इन हेतुओं को सुनकर वह बोलता भी क्या? एणिका ने भरे गले से पूछा—

परदेशी! तुमने अपना परिचय तो बताया ही नहीं। किस कुल के चन्द्र हो तुम?

कुवलयचन्द्र ने अपना सम्पूर्ण परिचय दे दिया तो एणिका ने कहा—

इस तरह अचानक गायब हो जाने से तो आपके माता-पिता बहुत दुःखी होंगे। आप कहें तो शुकराज के द्वारा आपका कुशल-समाचार अयोध्या भिजवा दूँ।

बहुत उपकार होगा। बड़ों को सन्तुष्ट और प्रसन्न करना छोटों का परम कर्तव्य है।

यह कहकर कुवलयचन्द्र ने विदा ली और आगे चल दिया। वनसुन्दरी एणिका और राजशुक उसे जाते देखते रहे।

राजपुत्रं दर्पफलिह :

विन्ध्याटवी को पार करके कुमार कुवलयचन्द्र सह्यादि (सह्य पर्वत) के समक्ष जा पहुँचा। सह्याद्रि पर्वत श्रेणी वन्य-वृक्षों से सुशोभित थी। सुगन्धित पुष्पों पर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। सह्याद्रि वन मानो नंदनवन के समान ही शोभाशाली था। वनश्री देखता हुआ कुमार कुवलयचन्द्र तलहटी के समीप जा पहुँचा। वहाँ उसे एक सार्थ दिखाई दिया। राजकुमार सार्थ के समीप पहुँचा और एक पुरुष से पूछा—

भाई! यह सार्थ कहाँ से आ रहा है और कहाँ जायेगा?

विध्य नगरी से आ रहा है और कांचीपुरी जायेगा। उस पुरुष ने बताया।

कुवलयचन्द्र ने पुनः पूछा—

विजयानगरी कहाँ है, बता सकते हो?

यह तो दक्षिण समुद्र किनारे पर बसी हुई और यहाँ से बहुत दूर है।

कुमार ने मन ही मन सोचा—तब तो जितना सम्भव हो, इस सार्थ के साथ चलना चाहिए। यह निश्चय कर वह सार्थपति से मिला और अपनी इच्छा प्रगट की—

यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी आपके साथ चलूँ।

सार्थपति वैश्रमण ने कुमार को ऊपर से नीचे तक देखा। शुभ लक्षण सम्पन्न क्षात्र तेज से विभूषित युवक को देखकर वह प्रभावित हुआ। उसने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दी।

कुवलयचन्द्र सार्थ के साथ चलने लगा। सार्थ ने सह्याद्रि की तलहटी से चलकर एक घने वन में प्रवेश किया और एक जलाशय के किनारे पड़ाव डाल दिया।

जलाशय के समीप ही भील-पल्ली थी। इसलिए सार्थवाह ने कीमती वस्तुएँ अन्दर रखी और रक्षकों को सचेत कर दिया। रक्षक भी धनुष-बाण और तलवार आदि शत्रों से सुसज्जित होकर सार्थ के चारों ओर घूम-घूमकर पहरा देने जगे।

रात्रि शान्तिपूर्वक व्यतीत हो गई। उषा की लाली फैलने लगी। सार्थ चलने की तैयारी करने लगा। इतने में ही मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो की आवाजों के साथ भीलों ने हमला कर दिया। सार्थ रक्षकों ने शक्ति भर सामना किया; पर वे टिक न सके। समस्त सार्थ व्याकुल हो गया। भीलों के विशाल समुदाय ने सार्थ को लूटना शुरू कर दिया और कीमती वस्तुओं को ले जाने लगे।

स्त्रियों को सुरक्षा की विशेष आवश्यकता होती है; क्योंकि लुटेरे उनको भी माल समझकर लूट ले जाते हैं। इसलिए उनकी सुरक्षा पुरुष का प्रथम कर्तत्य है। लेकिन प्राण सभी को प्यारे होते हैं। जब तक अपने प्राणों पर नहीं बनती तभी तक साधारण पुरुष कर्तव्य और आदर्श की डीगें हाँकते हैं। सार्थ के पुरुषों की भी यहीं दशा थी। जिसे जहाँ जगह मिली वह वहीं अपने प्राण लेकर भाग गया। भील सार्थ की स्त्रियों को बलात् अपने साथ ले जाने लगे।

सार्थपति की युवा पुत्री धनवती किसी तरह भीलों की आँख बचाती हुई कुवलयचन्द्र के समीप आ गई। वह बहुत घबड़ाई हुई और निराश थी। उसने याचना भरे स्वर में कहा—

हे भद्र पुरुष! तुम शूरवीर दिखाई पड़ते हो। मैं तुम्हारी शरण हूँ। भीलों से मेरी रक्षा करो।

भय न करो, भय न करो। कहकर कुवलयन्द्र ने धनवती को आश्वस्त किया। उसका क्षात्रतेज जाग उठा था। उसने बलात् एक भील से उसका धनुष छीन लिया और उसी का तरकस लेकर वाणों की बर्षा करने लगा। भील क्षत्रिय पुत्र की बाण वर्षा न सह सके और पीछे हटने लगे। अनेक धराशायी हो गये और शेष अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। अपनी सेना का पराभव होते देख भील सेनापति कुमार के सामने आया। उसने कुमार को ललकारा—

तुम तेजस्वी और पराक्रमी लगते हो। मेरे साथ युद्ध करो।

कुमार ने उत्तर दिया—

भील सेनापति! मेरा और तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं। तुम चोर लुटेरे हो और लोगों को दुःख देते हो। यद्यपि यह असमान युद्ध है किन्तु सार्थ और इन स्त्रियों की रक्षा के लिए मैं तुम्हारे साथ लड़ूँगा। शस्त्र सँभालो।

दोनों वीर युद्ध में प्रवृत्त हो गये। पहले बाणयुद्ध हुआ। उसमें धनुष टूट जाने से भील सेनापति की हार हुई। खड्ग युद्ध में भी वह पराजित हुआ और जब द्वन्द्व युद्ध होने लगा तो कुमार ने उसे अपनी भुजाओं में ऐसा जकड़ लिया कि लाख प्रयत्न करने पर भी न छूट सका। कुमार का बन्धन कसता चला गया। भील सेनापति के प्राण कण्ठ में आ गये, साँस अवरुद्ध हो गई, आँखें बाहर निकल आई। उसे मृत्यु साक्षात नजर आने लगी।

जब उसने समझ लिया कि बचना असम्भव है तो अपने पिछले कृत्यों पर पश्चात्ताप करके उसने उच्च स्वर में देव-गुरु-धर्म का नाम

लिया जिसे सुनकर कुमार का बन्धन कुछ शिथिल हुआ। अवसर का लाभ उठाकर भील सेनापति बन्धन से निकला और उछल कर दूर जा खड़ा हुआ। उसने बड़ी शीघ्रता से ढाल तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रों को दूर फेंका और कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ा हो गया।

यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर कुमार चकित रह गया। उसने हार्दिक दुःख प्रगट करते हुए भील सेनापति की विनय की। वह अपने कृत्य की क्षमा माँगने लगा।

कुमार को **मिच्छामि दुक्कडं** सुनकर भील सेनापति ने सोचा- अरे मैंने अपने ही साधर्मिक के शरीर पर प्रहार किया, साधर्मी की आशातना की, मुझे धिक्कार है। भील सेनापति ने मैं अपने साधर्मिक को प्रणाम करता हूँ कहकर कुमार को अपने कण्ठ से लगा लिया। उसने नेत्रों से पश्चात्ताप के आँसू बहने लगे।

भील सेनापति की यह दशा देखकर कुमार चकित रह गया उसने पूछा—

जिनेश्वर देव प्रणीत धर्म के अनुयायी होकर भी यह निद्यकर्म क्यों करते हो?

भील सेनापति ने कहा—

पूर्वकृत कर्मों के उदय के कारण मनुष्य अकरणीय भी करता है।

मनुष्य का विवेक किस लिएं है?

प्रबल कर्मों के उदय से मनुष्य मूढ़ बन जाता है। मैं अपने कर्म की बार-बार निन्दा करता हूँ किन्तु छोड़ नहीं पाता।

कुमार ने कर्म की प्रबलता और भील सेनापति की विवशता समझी और विचारमग्न हो गया। भील सेनापति ने सार्थपति और व्यापारियों को अभय दिया। उनका लूटा हुआ माल वापिस देकर कुमार का हाथ पकड़कर पल्ली की ओर ले गया। सार्थ कुमार का आभार मानता हुआ अपनी राह लगा।

भोजन आदि से निवृत्ति होकर भील सेनापति और कुमार कुवलयचन्द्र बैठकर परम्पर बातचीत कर रहे थे। इतने में श्वेत वस्त्रधारी एक पुरुष हाथ में लौहदण्ड लिए आया और भीलपति को सम्बोधित कर कहने लगा—

जिनेश्वर प्रणीत धर्म को जानकर भी तू निर्लज्जतापूर्वक चोरी और डाकेजनी जैसे निद्यकर्म करता है—इसका त्यागकर।

यह कहकर उस व्यक्ति ने भीलपति के सिर पर दण्ड प्रहार किया और वहाँ से चला गया। कुछ समय के लिए भीलपति संज्ञाशून्य हो गया। सचेत होकर कहने लगा—अहो! यह व्यक्ति कितना उपकारी है।

इस विचित्र घटना को देखकर कुमार चकित हो गया। वह तो सोच रहा था कि सचेत होते ही भीलपति इस पुरुष को मृत्युदण्ड देगा किन्तु हो विपरीत ही रहा था। भीलपति उसे उपकारी मान रहा था। कुमार ने पूछा—

भीलपति! तुम्हारा चरित्र तो विचित्र है। तुम मुझे भील नहीं दिखाई देते हो। कौन हो? यह पुरुष कौन था?

कुमार! यह वृत्तान्त बहुत लम्बा है। तुम साधर्मी हो, इस लिए सुनाता हूँ। भीलपति कहने लगा—

रत्नपुरी नगरी पर राजा रत्नमुकुट शासन करता था। न्यायवान और धर्मशील राजा के सुशासन में प्रजा सुखी थी और नगरी समृद्ध। शूद्रों के घरों पर भी पताकाएँ फहराती थी। राजा के दो पुत्र था—बड़ा दर्पफलिह और छोटा भुजफलिह।

एक बार राजा अपने शयनकक्ष में लेटा था। स्वर्ण दीपक के प्रकाश से कक्ष आलोकित था। राजा जन्म-मृत्यु की विडम्बना पर विचार कर रहा था। इतने में एक पतंगा दीपक की ओर आया। उसके मन में करुणा जाग्रत हुई। हाथ से पतंगे को पकड़ा और गवाक्ष के बाहर छोड़ दिया। पतंगा पुनः दीपक की लौ पर आकृष्ट हुआ। बार-

बार राजा उसे बाहर निकाल देता और बार-बार वह दीपक की ओर आ जाता। उसके प्राण बचाने के लिए राजा ने उसे एक जालीदार ढक्कन से ढक दिया। राजा को नींद आ गई। जब नींद टूटी तो उसने पतंगे को देखा। राजा के हृदय में विश्वास जम गया कि गरोड़ी पतंगे को खा गई। वह सोचने लगा—

इसको बचाने का कितना प्रयास किया परन्तु सब व्यर्थ हो गया। शायद इसकी मृत्यु का समय आ गया था। चिन्तन गहरा हुआ और उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया।

मैंने पूर्व जन्म में श्रमणाचार के पालन से देवभव प्राप्त किया और अब राजा बना हूँ। स्मृति की परतें खुल गई। श्रमणाचार और श्रमणधर्म आंखों के सामने तैरने लगे। पूर्व में उपार्जित किये ज्ञान स्मरण हो आया। विराग जागा अन्तर में पुण्य से और अपने हाथों से केच लुंचनकर चुनकर, मुनिवेश धारण कर वह प्रातः बेला में महल से निकल गयां।

रानियों को जैसे ही ज्ञात हुआ, वे रुदन करने लगी। मंत्रीगण आ गये। सभी मिलकर राजर्षि के पास पहुँचे, उन्हें वापिस संसार में लाने हेतु। किन्तु मुनि दृढ़ थे, संसार-सुख उन्हें आकृष्ट न कर सके। तब विमल मंत्री ने पूछा—

हे देव! आपके वैराग्य का कारण क्या था? आप किस धर्म में प्रव्रजित हुए हैं?

राजर्षि ने रात की सम्पूर्ण घटना सुनाकर अपने वैराग्य का कारण बताया और जिनधर्म का मर्म समझाया।

मन्त्री ने जब राज सिंहासन रिक्त होने की बात कहीं तो राजर्षि मौन होकर वहाँ से चले गए।

राजर्षि रत्नमुकुट तो निसंग होकर विवरण करने लगे किन्तु मन्त्रियों के सामने समस्या आई राजा बनाने की। दोनों राजकुमारों में से किसी एक को तो राजा बनाना ही था। अधिकार बड़े कुमार का था,

किन्तु छोटे कुमार और उसकी माता ने विरोध प्रकट कर दिया। इस समस्या का समाधान मन्त्री न कर सके तो उन्होंने राजा रत्नमुकुट के भाई अयोध्या नरेश दृढ़वर्म के पास दूत भेजा। राजा दृढ़वर्म ने स्पष्ट निर्देश दिया–बड़ा राजकुमार दर्पफलिह है। उसे राजा बना दिया जाय और छोटे कुमार भुजफलिह को युवराज पद दे दिया जाय।

सभी लोगों ने इस बात को स्वीकार कर लिया, किन्तु भुजफलिह की माता ने षड्यन्त्र किया। एक वैद्य से मिलकर उसने कुमार दर्पफलिह को धतूरा खिला दिया। धतूरा खाते ही उसकी आँखों की ज्योति बहुत ही मन्द हो गई। श्रवण और घ्राणशक्ति का नाश हो गया। विवेक और बुद्धि पलायन कर गई। पराक्रम समाप्त हो गया। जीवित लाश के समान वह महल से निकला और बेभान बना नगरी छोड़कर जंगल में निकल आया। भूख-प्यास के मारे बेहाल था। कहीं पानी मिले, इस खोज में भटकने लगा। एक जलकुण्ड के पास जा पहुँचा। उसके चारों ओर हर्र, आमले, बहेड़े आदि के वृक्ष थे। यद्यपि वह जल कड़वा था किन्तु प्यास तो बुझानी ही थी। पानी पीने के कुछ समय बाद वमन और रेचन शुरू हुआ तो अधिकांश विष निकल गया।

चित्त कुछ शान्त हुआ। इन्द्रियाँ काम करने लगी। पराक्रम भी वापिस लौटा। कुमार थोड़ा बहुत विचारने योग्य हुआ। तभी पल्लीपति भीलराज उधर से निकला और दर्प फलिह को अपने साथ ले गया। दर्पफलिह ने अपना परिचय बताया तो उसे पल्ली का अधिपति बनाकर कर्तव्यबोध कराया—वत्स! भील लोग जब तक अपने परम्परागत नियमों का पालन करते रहें तब तक इनकी रक्षा करना, अन्यथा इनका त्याग कर देना। इस संसार में धर्म ही एकमात्र शरण है, उसमें कभी प्रमाद मत करना।

दर्पफलिह ने पूछा—

इनके क्या नियम हैं?

भीलराज ने बताया—

ये लोग अहिंसक पशुओं को नहीं मारते, झूठ नहीं बोलते, अल्प धन वाले का माल नहीं लूटते, चोरी नहीं करते, स्त्रियों का अपहरण नहीं करते। जीविकोपार्जन का अन्य साधन नहीं होने से परिस्थितिवश लूट का काम करते हैं। किन्तु इसे भी अच्छा नहीं समझते।

यह कहकर भीलराज चले गए। वे वापिस नहीं लौटे, शायद साधु बन गए।

कुमार दर्पफलिह पल्लीपति बनकर भीलों का पालन करने लगा।

इतना कहकर भील सेनापति ने कहा—

हे कुमार! मैं ही राजा रत्नमुकुट का बड़ा पुत्र दर्पफलिह हूँ। कुमार ने आश्चर्य व्यक्त किया—

तुमने आदि जिनेश्वर के वंश में जन्म लिया, ऐसे धर्मी पिता के पुत्र हो, पल्लीपति ने भी तुम्हें ऐसा सदुपदेश और कर्तव्य शिक्षा दी, फिर भी यह दुष्कर्म।

यहीं तो कर्मों की विडम्बना है, कुमार! इसी कारण तो मैंने इस पुरुष को दण्ड प्रहार के लिए नियुक्त किया है। कभी तो धतूराविष का प्रभाव उतरेगा? मोह मदिरा उपशान्त होगी। किसी दिन तो सद्बुद्धि जगेगी और मैं चरित्र ग्रहण करूँगा—कहते कहते विह्वल हो गया पल्लीपति।

कुमार कुवलयचन्द्र पल्लीपति दर्पफलिह की विवशता और कर्मों की प्रबलता पर चकित था। कर्म कैसे बली है—मनुष्य चाहकर भी चारित्र नहीं ले सकता। उसने उसे बहुत सांत्वना दी और हितशिक्षा देकर जाने की इच्छा प्रगट की तो दर्पफलिह ने उसे रोककर उसका परिचय पूछा। कुमार ने अपना परिचय बता दिया तो उसने आग्रहपूर्वक कहा—

अब कैसे जा सकते हो, कुवलयचन्द्र! हम दोनों के पिता भी भाई हैं और हम भी। भाई के घर से इतनी जल्दी जाना क्या सम्भव

है? और अब तो वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गई है। सुख से यही रहो। मार्ग विषम है। मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा।

कुवलयचन्द्र मान गया। चार महीने तक दोनों आमोद-प्रमोद और धर्मचर्चा करते रहे। कुवलयन्द्र ने अपना समय दर्पफलिह को समझाने-बुझाने में लगाया।

वर्षा ऋतु समाप्त हुई। शरद का आगमन हुआ। कुवलयचन्द्र ने विदा माँगी और विजयानगरी की ओर चल दिया।

पाद-पूर्ति :

अनेक वन, पर्वत और नदियों को पार करके कुमार कुवलयचन्द्र विजयानगरी जा पहुँचा। दूर से ही उसे नगरी के भव्य भवन दिखाई पड़ने लगे। ऊँचे-ऊँचे भवन नगरी की समृद्धि के प्रतीक थे। नगरी के बाहर उद्यानों में भाँति-भाँति के पुष्पों के फलों के वृक्ष लगे थे। वह उत्तर दिशा के उद्यान में बैठकर विचार करने लगा—नगरी तो मुनिराज के कथनानुसार समृद्ध है। यहीं कुवलयमाला का निवास है। किन्तु अब आगे क्या करना चाहिए? कुवलयमाला से किस प्रकार मिला जाय? उसने कौन सी समस्या रखी है? उसका स्वभाव, रूप-रंग कैसा है? किससे पूछा जाय? कौन बतायेगा।

कुमार इन विचारों में निमग्न था कि उसके कानों में नूपुरों की रुनझुन पड़ी। दृष्टि उठाकर देखा—कुछ स्त्रियाँ पानी भरने पनघट पर जा रही हैं। उसके मन में विचार कौंधा—स्त्रियाँ बातून होती है। अन्य स्त्रियों के बारे बातचीत करना इनका स्वभाव ही है। अवश्य ही इनमें कुछ समाचार मिलेगा। वह चुपचाप उनके पीछे-पीछे चल दिया। स्त्रियाँ परस्पर हँसी-मजाक करती हुई चली जा रही थी। अचानक ही एक पूछ उठी—

अरी राजकुमारी के विवाह का क्या हुआ?

होना क्या है? कुछ नहीं हुआ।—दूसरी ने कहा।

क्यों? —पहली ने पुनः पूछा।

उसका विवाह तो हो ही नहीं सकता। तीसरी ने उत्तर दिया।

क्यों, क्या वह अन्धी, कानी है? चौथी ने पूछा।

पाँचवी बोली—

न वह, अन्धी-कानी है और न लूली-लंगड़ी। उसका रूप तो रति से भी सुन्दर है और गुणों की तो खानि ही है वह.....।

सब कुछ होते हुए भी रंग तो काला है। दूसरी ने बात बीच में ही काटी।

रंग से क्या होता है, वैसे तो सुन्दरता का भंडार है।—छठी ने अपना मत प्रकट किया।

हाँ कहती तो सत्य ही हो; पर बहिन! वह पादपूर्ति तो प्रमुख बाधा है। उसकी पूर्ति हो, तभी तो होगा विवाह।

कितने ही राजकुमार आये किन्तु कोई भी सफल न हो सका। न जाने कौन इसके भाग्य में लिखा है?

भाग्य में तो वही लिखा होगा, जो इसकी पाद-पूर्ति कर देगा और पाद-पूर्ति भी वहीं मानी जाएगी जो राजपुत्री ने लिखकर अपनी मंजूषा में रख छोड़ी है।

यों कहो कि इसका भाग्य इस समय तो मंजूषा में बन्द है।

एक प्रौढ़ा ने इस चख-चख को बन्द करने के लिए कहा—

अपने को क्या? राजा जाने, राजकुमारी जाने। तुम तो जल्दी से पानी भर कर घर चलो। सारा काम पड़ा है। देर हो गई तो पतियों की फटकार सुननी पड़ेगी।

पतियों की फटकार शब्द ने सभी के मुख बन्द कर दिए। शीघ्रता से कदम बढ़ाती हुई पनघट की ओर चलीं। कुवलयचन्द्र को

जितनी सूचना मिलनी थी, मिल गई। वह भी पीछे की ओर लौट गया। एक उद्यान में उच्च भवन को देखकर जिज्ञासा हुई। समीप ही बैठे एक पुरुष से पूछा—

भाई! यह किसका महल है?

उस पुरुष ने कुमार को ऊपर से नीचे तक देखा और कहा—

परदेशी मालूम पड़ते हो?

यह यहाँ का महल नहीं विद्यालय है। उस पुरुष ने बता दिया।

कुवलयचन्द्र चकित हो गया। जिस नगरी का विद्यालय ऐसा हो, उसके अध्यापक और छात्र भी अवश्य ही उच्च कोटि के होंगे। देखना चाहिए कि यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था कैसी है? कुमार विद्यालय में प्रवेश कर गया। स्थान-स्थान पर गुरु और छात्र दोनों ही सरल स्वभावी थे। वेश-भूषा साधारण किन्तु विचार ऊँचे, विद्या की लगन। अध्यापक कर्त्तव्य समझकर शिक्षा दे रहे थे और छात्र दत्तचित्त होकर सीख रहे थे। पुरुष और स्त्रियों के लिए उपयोगी सभी कलाओं और विद्याओं का प्रबन्ध था। गुरु-शिष्य में पिता-पुत्र का सा स्नेह था। विद्यालय वास्तव में विद्या मन्दिर था। देव मन्दिर की भाँति ही पवित्र और स्वच्छ।

घूमते-घूमते कुमार विद्यालय के पिछवाड़े पहुँच गया। वहाँ कुछ बालक आमोद-प्रमोद कर रहे थे। बालकों में कुछ किशोर थे और कुछ युवक। एक ने पूछा—

राजमहल के क्या हाल चाल है?

ठीक ही हैं। सभी सुखी है।—दूसरे ने उत्तर दिया।

तीसरा बोल पड़ा—

तू तो बुद्धू है। यह राजमहल में रहने वाली राजकुमारी कुवलयमाला के बारे में पूछ रहा है।

चौथा बोला—

उसकी पाद-पूर्ति तो मैं ही करूँगा.....।

तू क्या खाक करेगा पाद-पूर्ति, अपना मुँह दर्पण में तो देख।

पाँचवें ने उसकी हँसी उड़ाई।

हँसी क्या उड़ाते हो? देख लेना।

अच्छा तो बता—चौथा पाद कौन सा है।

वह तो राजमहल के द्वार पर लगी तख्ती पर लिखा है। सभी बालक हँस पड़े, कहने लगे—

चौथा चरण भी तुझे याद नहीं तो तीन चरण कैसे रचेगा।

उस किशोर का मुँह लटक गया।

कुवलयचन्द्र विद्यालय से निकला और राजमहल की ओर चल दिया। मार्ग में वह नगरी और दुकानों, बाजारों की शोभा भी देखता जाता था। एक पंक्ति में बनी दुकानें सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से सजी हुई थीं। भिन्न-भिन्न वस्तुओं के बाजार अलग-अलग थे। व्यापारीगण माल खरीदने-बेचने में लगे हुए थे। कोई-कोई हाथ पर हाथ रखे बैठा था तो कोई आय-व्यय का हिसाब लिख रहा था। गोल्ल, लाट, अंग, बंग, मगध सभी देशों के व्यापारी अपने-अपने देश की भाषा बोलते हुए खरीद-फरोख्त और लेन-देन कर रहे थे। बाजार की शोभा निरखते और भिन्न-भिन्न भाषा तथा बोलियों का रस लेते हुए कुमार कुवलयचन्द्र राजमहल के समीप जा पहुँचा।

राजमहल में उदासी छाई हुई थी। राजा, मन्त्री सभी चिंतामग्न थे। कुवलयचन्द्र को इस विपरीत स्थिति पर आश्चर्य हुआ—नगरी में खुशियों का अम्बार और राजमहल में उदासी। उसने एक भद्र पुरुष से पूछा—

यहाँ सभी चिंतामग्न क्यों है?

भद्र पुरुष ने बताया—

क्या कहें, महाभाग! सभी राजकुमारी के विवाह की चिंता में डूबे हैं।

क्या विघ्न है, विवाह में?

पुरुष-द्वेषिणी राजकुमारी का हठ।

क्या हठ है उसका?

भद्र पुरुष कहने लगा—

महाभाग! राजपुत्री ने एक गाथा (कविता) का चौथा चरण बनाकर उसकी पाद पूर्ति का हठ किया है। कहती है जो पुरुष यह पाद-पूर्ति कर देगा उसी के साथ विवाह करूँगी, अन्यथा नहीं।

तो क्या अभी तक पाद-पूर्ति नहीं हो सकी?

कहाँ? अनेक राजपुत्र आये और निराश चले गए। अब तुम्हीं बताओ यह व्यर्थ का हठ है या नहीं?

कुवलयचन्द्र ने मुस्करा कर कहा—

यदि उचित समझे तो मुझे भी वह पाद बता दें।

उस पुरुष ने कुमार को ऊपर से नीचे तक देखा। फिर निराश स्वर में बोला—

तुम भी देख लो, शायद बुद्धि काम कर ही जाय और राजकुमारी का हठ पूरा हो।

यह कहकर उस पुरुष ने तख्ती दिखा दी। उस पर अंकित था-

पंच वि पउमे विमाणम्मि।

(क्रमशः)

With best compliments

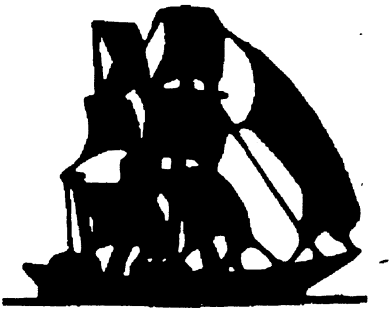

arcadia shipping limited

222, Tulsiani Chambers, Nariman Point,
Mumbai-400 021
Tel : +91 22 6658 0300 / Fax : +91 22 2287 2664
Email : arcadiashipping@vsnl.com

Ship Owners, Ship Managers

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3- 6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7- 8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism ISBN : 978-81-922334-4-4	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, ISBN : 978-81-922334-7-5	Price : Rs.	50.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology ISBN : 978-81-922334-2-0	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains ISBN : 978-81-922334-3-7	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India ISBN : 978-81-922334-5-1	Price : Rs.	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8	Price : Rs.	30.00
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN : 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

Our Quality Product of :

Anusandhan	Bhaonagari Ghantia
Kolkata Nasta	Jocker
Badsha Khan	Lajawab
Picnic	Papri Ghantia
Raja	Rim Jhim
Shubham	Tinku

MANUFACTURED BY

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

KOLKATA ADDRESS:

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3293-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9434060429, 9830423668

TITTHAYARA
Vol XXXVI No.08
25th November 2012

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects . Interiors . Consultants

5B, Indian Mirror Street,Kolkata-700013
Phone No.-2227 5240/45, Fax :22276356
Email Id:info@nahardecor.com